आयकर आयुक्त, मुंबई आदि

बनाम

मेसर्स पोदार सीमेंट प्राइवेट लिमिटेड आदि

27 मई, 1997

[के. एस. परिपूर्णन, के. वेंकटस्वामी और बी. एन. कृपाल, न्यायमूर्तिगण]

आयकर अधिनियम, 1961—धारा 22, 56—धारा 22 की तुलना में धारा 56 का दायरा — धारा 22 में प्रयुक्त शब्द 'जिसका करदाता स्वामी है'—अर्थ—निर्णय: 'स्वामी' वह व्यक्ति है जो अपने अधिकार की संपत्ति से आय प्राप्त करने का हकदार है—स्वामित्व अंतरण के लिए किसी पंजीकृत दस्तावेज की आवश्यकता नहीं — धारा 27 में संशोधन स्पष्टीकरणात्मक / घोषणात्मक प्रकृति का था—यह पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होगा।

कानूनों की व्याख्या—दो संभावित व्याख्याएँ—वह व्याख्या जो करदाता के हित में हो, उसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

शब्द एवं वाक्यांश: "स्वामी"—अर्थ—आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 22 के संदर्भ में।

उत्तरदाता कंपनी के पास एक इमारत में चार फ्लैट थे, जिनमें से दो सीधे बिल्डरों से खरीदे गए थे और अन्य दो उसकी सहयोगी कंपनी द्वारा और बाद में करदाता द्वारा खरीदे गए थे। ये सभी फ्लैट विभिन्न व्यक्तियों को किराए पर दिए गए थे और इन फ्लैटों से प्राप्त किराये की आय को आकलन वर्ष 1975-76 और 1976-77 के रिटर्न में शामिल किया गया था। करदाता ने दावा किया कि फ्लैटों से प्राप्त किराये की आय आयकर अधिनियम की धारा 56 के तहत 'अन्य स्रोतों से आय' के रूप में कर योग्य है, न कि 'मकान संपत्ति से आय' के रूप में, क्योंकि करदाता कंपनी फ्लैटों की संपत्ति की 'कानूनी मालिक' नहीं था, क्योंकि फ्लैटों के खरीदारों द्वारा गठित सहकारी समिति को चार फ्लैटों की संपत्ति का स्वामित्व अंतरित नहीं किया गया था। करदाता का यह दावा खारिज कर दिया गया। अपील में, न्यायाधिकरण ने करदाता के पक्ष को स्वीकार करते हुए यह माना कि फ्लैटों से प्राप्त आय पर अधिनियम की धारा 22 के तहत 'मकान संपत्ति से आय' के रूप में कर नहीं लगाया जा सकता, बल्कि अधिनियम की धारा 56 के तहत 'अन्य स्रोतों से आय' के रूप में कर लगाया जाना चाहिए। वर्तमान अपील न्यायाधिकरण के इस आदेश के विरुद्ध राजस्व विभाग द्वारा दायर की गई है।

राजस्व विभाग का यह मामला था कि प्रवर्तक कानूनी मालिक होने के नाते, मकान संपत्ति से होने वाली आय का आकलन अधिनियम की धारा 22 के तहत किया जाना चाहिए और फ्लैटों के मालिक संबंधित संपत्तियों के लाभकारी उपयोग में होने के कारण, उन्हें अधिनियम की धारा 56 के तहत कर का भुगतान करना होगा।

प्रतिवादियों ने यह तर्क दिया कि मकान मालिक, वह व्यक्ति जो अपने अधिकार से मकान का उपयोग कर सकता है या उससे आय प्राप्त कर सकता है, पर 'मकान से होने वाली आय' शीर्षक के अंतर्गत कर लगाया जाना चाहिए और मकान से होने वाली आय पर दोहरी कर प्रणाली लागू नहीं की जा सकती - एक बार धारा 22 के तहत कानूनी मालिक पर और दूसरी बार अधिनियम की धारा 56 के तहत वास्तविक उपयोगकर्ता और आय प्राप्तकर्ता पर। ऐसा कर लगाना न्यायसंगतता और निष्पक्षता के विरुद्ध होगा, जिसकी अनुमति सामान्यतः न्यायालयों द्वारा नहीं दी जाती है।

अपील को स्वीकार करते हुए, इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1.1 सामान्य कानून के तहत 'मालिक' का अर्थ वह व्यक्ति है जिसे संपत्ति अंतरण अधिनियम, पंजीकरण अधिनियम आदि जैसी आवश्यकताओं या कानूनों का पालन करने के बाद वैध स्वामित्व कानूनी रूप से अंतरित किया गया हो। लेकिन आयकर अधिनियम की धारा 22 के संदर्भ में, जमीनी हकीकतों को ध्यान में रखते हुए और आयकर अधिनियम के उद्देश्य, अर्थात् 'आय पर कर लगाना', को ध्यान में रखते हुए, 'मालिक' वह व्यक्ति है जो अपने अधिकार से संपत्ति से आय प्राप्त करने का हकदार है। इसलिए, प्रवर्तक/ठेकेदार पूर्ण प्रतिफल प्राप्त करने के बाद कब्जा छोड़ देते हैं, जिससे 'खरीदारों' को संपत्ति के लाभों उठाने में सक्षम बनाया जा सके, भले ही संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के तहत 'मालिक' के लिए आवश्यक कोई पंजीकृत दस्तावेज निष्पादित नहीं किया गया हो। आयकर अधिनियम की धारा 22 के तहत, संपत्ति पर कब्जा/उपयोग करने वाले व्यक्ति को कानूनी मालिक माना जा सकता है, और अधिनियम की धारा 22 के तहत कर का भुगतान करने के लिए कहा जा सकता है। [425-डी; 421-बी]

1.2. यह मानते हुए कि अधिनियम की धारा 22, जो कि प्रभार लगाने वाली धारा के समान है, की दो संभावित व्याख्याएँ हैं, यह सर्वविदित है कि करदाता के हित में जो व्याख्या उपयुक्त हो, उसे ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए। [419-एच; 420-ए]

1.3 वित्त विधेयक, 1988 द्वारा प्रस्तावित संशोधन अधिनियम की धारा 27 (iii), (iii)

(ए) और (iii) (बी) से संबंधित होने के कारण घोषणात्मक/स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति का था। फलस्वरूप, ये प्रावधान पूर्वव्यापी रूप से लागू होते हैं। इसका उद्देश्य अधिनियम की धारा 22 में 'मालिक' शब्द के अर्थ के संबंध में एक स्पष्ट चूक को दूर करना या संदेह को स्पष्ट करना था। [425-ए-सी]

दीवान दौलत राय कपूर बनाम नई दिल्ली नगर समिति, **122 आई.टी.आर. 700**; *सी.आई. टी., बॉम्बे सिटी-III बनाम ज़ोरोस्ट्रियन बिल्डिंग सोसाइटी लिमिटेड,* **102 आई.टी.आर. 499**; *बालकृष्ण गुप्ता और अन्य बनाम स्वदेशी पॉलीटेक्स लिमिटेड और एक अन्य,* **[1985) 2 एस.सी.सी. 167**; *नारनदास करसनदास बनाम एस.ए. कामतम और एक अन्य,* **(1977) 2 एस.सी.आर. 341**; *बाई दोसाबाई बनाम माथुरदार गोविंददास और अन्य,* **[1980) 3 एस.सी.आर. 762**; *रानी छत्र कुमारी बनाम मोहन बिक्रम,* **(1931) 58 आई.ए. 279**; *आर.बी.आर. सुब्बा राव और अन्य बनाम सी.आई.टी.,* **30 आई.टी.आर. 163**; *(दिवंगत) नवाब सर मीर उस्मान अली खान बनाम संपत्ति कर आयुक्त, हैदराबाद,* **162 आई.टी.आर. 888 और** *केशवलाल जेठलाल शाह बनाम मोहनलाल भगवानदास और एक अन्य,* **[1968] 3 एस.सी.आर. 623, संदर्भित।**

अपर सीआईटी बनाम उ. प्र. राज्य एग्रो इंडस्ट्रियल निगम, **127 आई.टी.आर. 97 (सभी)**; *श्रीमती कला रानी बनाम सीआईटी पटियाला-I,* **130 आई.टी.आर. 321 (पी&एच)**; *अपर सीआईटी, बिहार बनाम सहाय प्रॉपर्टीज एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी (प्रा) लिमिटेड,* **144 आई.टी.आर. 357 (पटना)**; *सैफुद्दीन बनाम सीआईटी,* **156 आई.टी.आर. 127 (राजस्थान)**; *मडगुल उद्योग बनाम सीआईटी,* **184 आई.टी.आर. 484 (कलकत्ता)**; *महारानी योगेश्वरी कुमारी बनाम सीआईटी,* **213 आई.टी.आर. 574 (राजस्थान)**; *सीआईटी बनाम जनरल मार्केटिंग & मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड,* **222 आई.टी.आर. 574 (कलकत्ता) और** *सीआईटी बनाम कृष्ण लाल अजमानी,* **222 आई.टी.आर. 653 (पटना), अनुमोदित।**

सुशील अंसल बनाम सीआईटी, दिल्ली-III, **160 आई.टी.आर. 308, खारिज कर दिया गया।**

आर.बी. जोधा मल कुठियाला बनाम सीआईटी, पंजाब, जे&के और एचपी, **82 आई.टी.आर. 570**; *मो. नूर और अन्य. आदि बनाम मो. इब्राहिम और अन्य आदि,* **[1994) 5 एस.सी.सी. 562**; *केशवलाल जेठालाल शाह बनाम मोहनलाल भगवानदास एवं एक अन्य,* **[1968) 3 एस.सी.आर. 623 और** *राज्य बनाम एस.जे. चौधरी,* **[1996) 2 एस.सी.सी. 428,**

पर भरोसा किया।

क्रॉफर्ड्स स्टैच्यूटरी कंस्ट्रक्शन, **पृष्ठ 107**; *फ्रांसिस बेनियन स्टैच्यूटरी इंटरप्रिटेशन (द्वितीय संस्करण)* **1992, 105**, *न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह,* **(षष्ठम संस्करण, 1996)** और *प्रिंसिपल्स ऑफ स्टैच्यूटरी इंटरप्रिटेशन,* **संदर्भित।**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1986 का कर संदर्भ वाद सं. 9-10

आई. टी. ए. सं. 3390 (मुंबई) और 3391 (मुंबई)/1981 से उद्भूत।

मूल्यांकन वर्ष: 1975-76 और 1976-77

अपीलकर्ताओं की ओर से के. एन. शुक्ला, आर. सतीश, के. एन. नागपाल और श्री बी. कृष्ण प्रसाद।

उत्तरदाताओं की ओर से हरीश एन. साल्वे, जी. सी. शर्मा, संजीव पुरी, एन. गणपति, विनय वैश, संतोष कु. अग्रवाल, बी. एस. आहूजा और ए. सुब्बा राव।

हस्तक्षेपकर्ताओं के लिए एम. एस. स्याली और सुश्री गीतांजलि।

न्यायालय का निर्णय **न्यायमूर्ति के. वेंकटस्वामी** के द्वारा दिया गया था

इन सभी मामलों में आयकर अधिनियम, 1961 (जिसे आगे 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 22 के दायरे पर विचार किया जाना आवश्यक हो जाता है।

हमारे विचार के लिए उठने वाले प्रश्न को समझने के लिए संक्षिप्त तथ्य आवश्यक हैं।

कर संदर्भ वाद संख्या 9-10/86 में उत्तरदाता एक कंपनी और अधिनियम के तहत एक करदाता है (जिसे आगे 'करदाता' कहा गया है)। यह कंपनी मुंबई के नेपियनसी रोड स्थित "सिल्वर आर्च" नामक भवन में चार फ्लैटों (संख्या 231, 232, 241 और 242) का मालिक है। उक्त भवन के निर्माता मेसर्स मालाबार इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड हैं। उपरोक्त चार फ्लैटों में से दो फ्लैट उत्तरदाता कंपनी ने सीधे बिल्डरों से खरीदे थे और अन्य दो फ्लैट उसकी सहयोगी कंपनी ने और बाद में करदाता ने खरीदे थे। फ्लैटों का कब्जा अगस्त 1973 में पूर्ण भुगतान के बाद लिया गया था। यह सर्वविदित है कि ये सभी फ्लैट विभिन्न व्यक्तियों को किराए पर दिए गए हैं। इन फ्लैटों से प्राप्त किराये की आय को संबंधित आकलन वर्षों, अर्थात् 1975-76 और 1976-77 के लिए रिटर्न में शामिल किया गया था।

करदाता का यह तर्क था कि फ्लैटों से प्राप्त किराये की आय अधिनियम की धारा 56 के तहत 'अन्य स्रोतों से आय' के रूप में कर योग्य थी, क्योंकि करदाता कंपनी फ्लैटों में संपत्ति का 'कानूनी मालिक' नहीं था। निर्धारण अधिकारी के समक्ष यह दावा मुख्य रूप से इस आधार पर किया गया था कि संपत्ति (चार फ्लैट) का स्वामित्व फ्लैटों के खरीदारों द्वारा गठित सहकारी समिति को अंतरित नहीं किया गया था और जब तक स्वामित्व करदाता के नाम पर अंतरित नहीं हो जाता, तब तक फ्लैटों से प्राप्त किराये की आय को 'मकान संपत्ति से आय' (अधिनियम की धारा 22 के तहत) के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता था।

करदाता द्वारा एक अन्य सहायक प्रश्न भी उठाया गया था कि किराये की आय की गणना वास्तविक वार्षिक मूल्य पर की जानी चाहिए, न कि प्राप्त वास्तविक किराये पर। वास्तव में, करदाता ने प्रभार्य किराया 49,800 रुपये दिखाया है। हालांकि, आयकर अधिकारी ने पड़ोसी भवन से फ्लैटों के संबंध में प्राप्त होने वाले किराये के आधार पर उन फ्लैटों का वार्षिक किराया मूल्य 1,31,268 रुपये माना है। आयकर अधिकारी ने करदाता के इस दावे को भी खारिज कर दिया कि फ्लैटों से होने वाली आय का आकलन अधिनियम की धारा 56 के तहत किया जाना चाहिए।

आयकर अधिकारी के आदेशों से असंतुष्ट होकर करदाता ने आयकर आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील दायर की, जिन्होंने दिनांक 9.4.81 के एक आदेश द्वारा आयकर अधिकारी द्वारा ऊपर बताए गए विचारों को पूर्णतः बरकरार रखा। अपीलीय प्राधिकारी से आदेश प्राप्त होने के बाद, करदाता ने दिनांक 14.9.81 को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अधिनियम की धारा 154 के तहत विविध आवेदन प्रस्तुत किए। अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष यह तर्क दिया गया कि *दीवान दौलत राय कपूर बनाम नई दिल्ली नगर समिति*, 122 आई.टी.आर. 700 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर, अधिकारियों को उन फ्लैटों का वार्षिक किराया मानक किराए के आधार पर लेना चाहिए, न कि किसी अन्य फ्लैट के संबंध में प्राप्त होने वाले वास्तविक किराए के आधार पर। अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 17.3.82 के आदेश द्वारा करदाता के विविध आवेदनों को स्वीकार कर लिया और अपने पूर्ववर्ती दिनांक 9.4.81 के आदेश में संशोधन किया। अपीलीय आदेश से संतुष्ट न होकर, करदाता ने अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध दो अपीलें दायर की, जिसमें तर्क दिया गया कि चार फ्लैटों से होने वाली आय का आकलन अधिनियम की धारा 22 के बजाय धारा 56 के तहत किया जाना चाहिए था। राजस्व विभाग ने 17.3.82 के संशोधन आदेश के विरुद्ध दो अपीलें दायर की।

उन चारों अपीलों पर बॉम्बे आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण (बॉम्बे बेंच "ए") द्वारा विचार किया गया और न्यायाधिकरण ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के कई निर्णयों का अनुसरण करते हुए दिनांक 8.5.86 के एक सामान्य आदेश द्वारा करदाता के मामले को स्वीकार किया और यह माना कि फ्लैटों से होने वाली आय पर धारा 22 के तहत 'मकान संपत्ति से आय' के रूप में कर नहीं लगाया जा सकता है, बल्कि अधिनियम की धारा 56 के तहत 'अन्य स्रोतों से आय' के रूप में कर लगाया जाना चाहिए। हालांकि, न्यायाधिकरण ने दूसरे प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं दिया, अर्थात्, क्या गणना के लिए वास्तविक किराये की आय को ध्यान में रखा जाना चाहिए या प्रभार्य किराये के मूल्य को। हम यहां इस दूसरे प्रश्न से संबंधित नहीं हैं।

जब राजस्व विभाग ने अधिनियम की धारा 256(1) के तहत न्यायाधिकरण से अपील की, तो उच्च न्यायालयों के बीच परस्पर विरोधी निर्णयों को देखते हुए मामले को अधिनियम की धारा 257 के तहत सीधे इस न्यायालय को भेज दिया।

संदर्भित प्रश्न इस प्रकार है:-

> "क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, न्यायाधिकरण का यह निर्णय विधिवत उचित था कि बॉम्बे के "सिल्वर आर्च" नामक भवन में स्थित फ्लैटों से करदाता कंपनी द्वारा प्राप्त आय आयकर अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत 'अन्य स्रोतों से आय' के अंतर्गत कर योग्य है, न कि आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 22 के अंतर्गत 'मकान संपत्ति' से आय के अंतर्गत?

दीवानी अपील सं. 4165/94:

इस मामले में उत्तरदाता-करदाता, जो एक व्यक्ति है, ने आकलन वर्ष 1983-84 के लिए कैलाश बिल्डिंग, कर्जन रोड, नई दिल्ली में स्थित फ्लैट संख्या 406 और 407 से प्राप्त दो फ्लैटों और पार्किंग स्थल से प्राप्त किराये की आय का विवरण प्रस्तुत किया और दावा किया कि उक्त आय को 'मकान संपत्ति से आय' के रूप में मूल्यांकित किया जाना चाहिए। हालांकि, आयकर अधिकारी का मत था कि करदाता के पास केवल किरायेदारी का अधिकार था और इसलिए, आय को "अन्य स्रोतों से आय" शीर्षक के अंतर्गत, अर्थात् अधिनियम की धारा 56 के अंतर्गत मूल्यांकित किया जा सकता है।

निर्धारण अधिकारी के आदेश से असंतुष्ट होकर, आयकर आयुक्त (अपील), नई दिल्ली

के समक्ष अपील दायर की गई, जिन्होंने करदाता के मामले को स्वीकार कर लिया और अधिनियम की धारा 22 के तहत मूल्यांकन का निर्देश दिया।

अपीलीय आदेश से असंतुष्ट राजस्व विभाग ने न्यायाधिकरण में अपील दायर की। न्यायाधिकरण ने माना कि अपीलीय प्राधिकारी का यह निर्णय सही था कि फ्लैटों से होने वाली आय को मकान संपत्ति से होने वाली आय के रूप में मूल्यांकित किया जाना चाहिए, न कि अन्य स्रोतों से होने वाली आय के रूप में। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, न्यायाधिकरण ने पाया कि करदाता फ्लैटों के साथ-साथ संबंधित पार्किंग स्थल का भी स्वामी है। न्यायाधिकरण ने धारा 256(1) के तहत संदर्भ के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया और उच्च न्यायालय ने भी धारा 256(2) के तहत संदर्भ को अस्वीकार कर दिया। अतः, राजस्व विभाग ने विशेष अनुमति से यह अपील दायर की है।

दीवानी अपील सं. 4549/95

इस मामले में अपीलकर्ता एक व्यक्ति है और संबंधित मूल्यांकन वर्ष 1970-71 है। अपीलकर्ता 'आकाश दीप' नामक बहुमंजिला इमारत में तीन फ्लैटों का मालिक है। यह बहुमंजिला इमारत बाराखंबा रोड स्थित सरकारी जमीन पर बनी है, जिसे स्थायी पट्टे पर दिया गया है। मूल पट्टेदार का नाम ज्ञात नहीं है। हालांकि, अंसल एंड सहगल प्राइवेट लिमिटेड नामक कंपनी ने पट्टेदार के साथ एक समझौता किया और उक्त जमीन पर एक बहुमंजिला इमारत का निर्माण किया। करदाता ने दावा किया और इस बात पर कोई विवाद नहीं था कि उसने तीनों फ्लैटों की पूरी कीमत चुका दी है और उन पर कब्ज़ा प्राप्त कर लिया है। अपीलकर्ता का यह भी दावा है कि उसे इन फ्लैटों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त थे और उसने इन्हें विभिन्न किरायेदारों को किराए पर दिया हुआ था, जिससे उसे आय प्राप्त हो रही थी और वह इन पर नगरपालिका करों का भुगतान कर रहा था। विचाराधीन आकलन वर्ष के आयकर रिटर्न में अपीलकर्ता ने इन फ्लैटों से किराए के रूप में 18,403 रुपये की शुद्ध आय दिखाई है। उक्त शुद्ध आय नगरपालिका करों के साथ-साथ अधिनियम की धारा 24 के तहत मरम्मत के मद में वार्षिक मूल्य के एक-छठे हिस्से की वैधानिक कटौती के बाद प्राप्त की गई थी। आयकर अधिकारी ने रिटर्न स्वीकार करते हुए करदाता द्वारा दावा की गई मरम्मत की कटौती को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि यह आय अधिनियम की धारा 56 के तहत 'अन्य स्रोतों से आय' शीर्षक के अंतर्गत कर योग्य होनी चाहिए।

इससे असंतुष्ट होकर अपीलकर्ता ने सहायक अपीलीय आयुक्त के समक्ष अपील दायर

की, जिन्होंने अपीलकर्ता के दावे से संतुष्ट होकर आयकर अधिकारी को 'मकान संपत्ति से आय' शीर्षक के तहत आय का आकलन करने और मरम्मत के मद में वैधानिक राहत प्रदान करने का निर्देश दिया।

राजस्व विभाग ने न्यायाधिकरण के समक्ष अपील दायर की। न्यायाधिकरण ने पाया कि करदाता के पक्ष में फ्लैटों के संबंध में कोई विक्रय विलेख नहीं था। केवल विक्रय समझौता था, जिसमें खरीद मूल्य का भुगतान और फ्लैटों का अधिभोग या कब्ज़ा सौंपना शामिल था। न्यायाधिकरण ने यह भी पाया कि फ्लैटों सहित बहुमंजिला इमारत का ऊपरी ढांचा मूल रूप से उस कंपनी के स्वामित्व में था जिसने इसका निर्माण किया था और करदाता ने केवल फ्लैटों को खरीदने का समझौता किया था, हालांकि वास्तव में करदाता ने खरीद मूल्य की सभी किश्तें चुका दी थीं। न्यायाधिकरण का मत था कि जब तक करदाता के पक्ष में नियमित विक्रय विलेख निष्पादित नहीं हो जाते, फ्लैटों का स्वामित्व कंपनी के पास ही रहेगा और इसलिए, करदाता कानूनन उन फ्लैटों का कानूनी मालिक होने का दावा नहीं कर सकता। न्यायाधिकरण ने दिल्ली उच्च न्यायालय के एक निर्णय को लागू करते हुए अपीलीय सहायक आयुक्त द्वारा लिए गए मत को पलट दिया और आयकर अधिकारी के आदेश को बहाल कर दिया। अपीलकर्ता अधिनियम की धारा 256(1) के तहत संदर्भ प्राप्त करने में सफल रहा और उच्च न्यायालय ने मामले पर विस्तार से विचार किया। हालांकि, उच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णयों के मद्देनजर न्यायाधिकरण द्वारा लिए गए मत की पुष्टि की और यह माना कि विचाराधीन आय अधिनियम की धारा 56 के तहत अन्य स्रोतों से आय के रूप में कर योग्य है। इससे असंतुष्ट होकर अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति से यह अपील दायर की है।

इन सभी मामलों में तथ्यों के वर्णन से यह स्पष्ट होगा कि अधिनियम की धारा 22 और धारा 56 के दायरे के संबंध में कानून का एक सामान्य प्रश्न उठता है।

राजस्व विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के.एन. शुक्ला ने सामान्य रूप से यह तर्क दिया कि राजस्व विभाग ने उपरोक्त तथ्यों के आधार पर फ्लैट मालिकों के कर निर्धारण में एकसमान रुख नहीं अपनाया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि फ्लैट मालिक और प्रवर्तक दोनों आयकर अधिनियम की धारा 56 और 22 के तहत कर के लिए उत्तरदायी हैं। दूसरे शब्दों में, प्रवर्तक कानूनी मालिक हैं और मकान संपत्ति से होने वाली आय पर अधिनियम की धारा 22 के तहत प्रवर्तकों द्वारा कर लगाया जाना चाहिए, जबकि फ्लैट

मालिक संबंधित संपत्तियों के लाभकारी उपयोग में होने के कारण धारा 56 के तहत 'अन्य स्रोतों से आय' के रूप में कर का भुगतान करेंगे। उन्होंने इस न्यायालय के एक निर्णय *आर. बी. जोधा मल कुठियाला बनाम आयकर आयुक्त, पंजाब, जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश,* 82 आई टी आर 570, जो आयकर अधिनियम के अंतर्गत दिया गया था, की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया तथा एक हालिया निर्णय *मो. नूर एवं अन्य बनाम मो. इब्राहिम एवं अन्य,* [1994] 5 एस.सी.सी. 562, जो राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 के अंतर्गत दिया गया था, का भी संदर्भ दिया। उन्होंने बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक निर्णय *सी.आई.टी., बॉम्बे सिटी-III बनाम ज़ोरोस्ट्रियन बिल्डिंग सोसाइटी लिमिटेड,* 102 आई टी आर 499, की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया। सामान्य तौर पर, उन्होंने राजस्व विभाग द्वारा चुनौती दिए गए आकलन करते समय लिए गए विरोधाभासी रुख को देखते हुए, इस मुद्दे पर अंतिम निर्णय न्यायालय पर छोड़ दिया और अपना दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया।

वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री शर्मा ने प्रमुख तर्क प्रस्तुत किए और उनके अनुसार, अधिनियम की धारा 22 मकान संपत्ति से उत्पन्न आय पर कर लगाती है, न कि मकान संपत्ति के स्वामित्व पर। मकान संपत्ति से होने वाली ऐसी आय वास्तविक या काल्पनिक हो सकती है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि 'मकान संपत्ति' शीर्षक के अंतर्गत आय, चाहे वह वास्तविक हो या काल्पनिक, कर से बच नहीं सकती, चाहे कोई भी स्वामी माना जाए, लेकिन निश्चित रूप से एक ही समय में दो स्वामी नहीं हो सकते। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, स्वामी वह व्यक्ति है जो अपने अधिकार से मकान संपत्ति का उपयोग कर सकता है या उससे आय प्राप्त कर सकता है। केवल ऐसे स्वामी को ही 'मकान संपत्ति से आय' शीर्षक के अंतर्गत कर योग्य माना जाना चाहिए। केवल उसी को इस शीर्षक के अंतर्गत कर योग्य माना जाना चाहिए। यदि उसे इस शीर्षक के अंतर्गत कर योग्य नहीं माना जा सकता है, तो उस पर कर नहीं लगाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, अधिनियम की धारा 56 के तहत 'अन्य स्रोतों से आय' शीर्षक के अंतर्गत उन पर कर नहीं लगाया जा सकता। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि मकान संपत्ति से होने वाली आय पर दोहरी कर प्रणाली लागू नहीं की जा सकती - एक बार धारा 22 के तहत कानूनी मालिक के हाथों में और दूसरी बार अधिनियम की धारा 56 के तहत वास्तविक उपयोगकर्ता और आय प्राप्तकर्ता के हाथों में। इस प्रकार के कर निर्धारण की अनुमति देना निष्पक्षता और न्याय के विरुद्ध होगा, जिसकी अनुमति सामान्यतः न्यायालय नहीं देते। अपने अंतिम तर्क के फलस्वरूप उन्होंने यह भी कहा कि यह सर्वविदित है कि ऐसी व्याख्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिससे कठिनाई और दोहरे

कराधान से बचा जा सके, न कि ऐसी व्याख्या को जिससे कठिनाई और दोहरे कराधान की स्थिति उत्पन्न हो। अंत में, श्री शर्मा ने तर्क दिया कि संसद ने जहाँ भी आवश्यक समझा, दोहरे कराधान से बचने के लिए धारा 64(2), 69 डी, 93(2) और 94(4) जैसी स्पष्ट धाराएँ बनाईं, लेकिन धारा 22 से 27 के संबंध में ऐसा कोई स्पष्ट प्रावधान आवश्यक नहीं समझा गया, क्योंकि उन्होंने अपने विवेक से यह माना कि आयकर प्राधिकरण एक ही आय का दो बार आकलन नहीं करेगा, एक बार कानूनी मालिक के हाथों में काल्पनिक आधार पर और दूसरी बार खरीदार के हाथों में किराए की वास्तविक प्राप्ति पर।

श्री शर्मा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने इन तर्कों के समर्थन में जोधा मल मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय के फैसले पर अत्यधिक भरोसा जताते हुए उच्च न्यायालय के कई फैसलों का भी हवाला दिया, जिनमें जोधा मल मामले में इस न्यायालय के फैसले में प्रतिपादित सिद्धांतों को लागू किया गया है। जिन फैसलों पर भरोसा किया गया है, वे निम्नलिखित हैं।

1. *अतिरिक्त सी.आई.टी. बनाम उ. प्र. राज्य एग्रो इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन,* 127 आई टी आर 97, (इलाहाबाद)।
2. *श्रीमती कला रानी बनाम सी.आई.टी. पटियाला- I,* 130 आई टी आर 321 (पंजाब एवं हरियाणा)।
3. *अतिरिक्त सी.आई.टी., बिहार बनाम सहाय प्रोपर्टीज़ एंड इन्वेस्टमेंट कम्पनी (प्रा.) लिमिटेड,* 144 आई टी आर 357 (पटना)।
4. *सैफुद्दीन बनाम सी.आई.टी.,* 156 आई टी आर 127 (राजस्थान)।
5. *मदगुल उद्योग बनाम सी.आई.टी.,* 184 आई टी आर 484 (कलकत्ता)।
6. *महारानी योगेश्वरी कुमारी बनाम सी.आई.टी.,* 213 आई टी आर 541 (राजस्थान)।
7. *सी.आई.टी. बनाम जनरल मार्केटिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड,* 222 आई टी आर 574 (कलकत्ता)।
8. *सी.आई.टी. बनाम कृष्णा लाल अजमानी,* 222 आई टी आर 653 (पटना)।

कर संदर्भ वाद संख्या 9-10/86 में उत्तरदाता-करदाता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. साल्वे ने श्री शर्मा से भिन्न मत व्यक्त करते हुए तर्क दिया कि आयकर अधिनियम की धारा 22 में प्रयुक्त शब्द 'मालिक' को उसके सामान्य अर्थ में समझा जाना चाहिए, न कि उस अर्थ में जिसमें इस न्यायालय ने *जोधा मल* के मामले (उपरोक्त) में

इसका अर्थ लगाया था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, 'मालिक' शब्द केवल कानूनी मालिक को संदर्भित करता है, किसी और को नहीं, क्योंकि भारतीय न्यायशास्त्र में दोहरे स्वामित्व की अवधारणा प्रचलित नहीं है। उन्होंने हमारा ध्यान पुराने आयकर अधिनियम की धारा 9(1) की भाषा की ओर आकर्षित किया, जो वर्तमान अधिनियम की धारा 22 के अनुरूप है, और तर्क दिया कि मूल्यांकन मकान संपत्ति से प्राप्त वास्तविक आय पर निर्भर नहीं करता है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा लिया गया यह मत कि फ्लैट के मालिक, भले ही उनके पक्ष में कोई पंजीकृत विक्रय दस्तावेज न हो, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53 ए के तहत मालिक माने जा सकते हैं, पूरी तरह गलत और निराधार है। उनके अनुसार, यह मत इस न्यायालय के कई निर्णयों में स्थापित कानून की स्थिति के विपरीत है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि स्वामित्व सर्वोपरि है और इसकी व्याख्या किसी अन्य रूप में नहीं की जा सकती। श्री साल्वे ने कहा कि यदि उनके द्वारा सुझाई गई धारा 22 की व्याख्या से दोहरा कराधान भी होता है, तब भी इसे कानून में सही स्थिति मानते हुए स्वीकार किया जाना चाहिए। कराधान कानून में कोई समानता नहीं है। अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया:

1. बालकृष्ण गुप्ता एवं *अन्य बनाम स्वदेशी पॉलीटेक्स लिमिटेड एवं अन्य*, [1985] 2 एस.सी.सी. 167.
2. *नारनदास करसनदास बनाम एस.ए. कांतम एवं एक अन्य,* [1977] 2 एस सी आर 341.
3. *बाई दोसाबाई बनाम माथुरदास गोविंददास एवं अन्य,* [1980] 3 एस सी आर 762.
4. *रानी छत्रा कुमारी बनाम मोहन बिक्रम,* (1931) 58 आई. ए. 279.

हमें यह जानकारी मिली है कि इसी तरह का एक मामला दिल्ली उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष लंबित है और उस मामले में उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री स्याली ने अपने तर्क प्रस्तुत करने के लिए हमारी अनुमति मांगी थी। प्रश्न महत्वपूर्ण होने के कारण, हमने उन्हें अपने तर्क प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी।

विद्वान अधिवक्ता श्री स्याली ने तर्क दिया कि आयकर अधिनियम एक स्व-निहित संहिता है, जिसमें सभी मामलों का व्यापक रूप से वर्णन किया गया है और इसके प्रावधान सामान्य नियम से हटकर निर्णय लेने का इरादा दर्शाते हैं। इसके समर्थन में उन्होंने

आर.बी.आर. सुब्बा राव एवं अन्य बनाम सीआईटी, 30 आई.टी.आर. 163 मामले में इस न्यायालय के एक फैसले का हवाला दिया। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, धारा 22 में प्रयुक्त शब्द 'मालिक' का अर्थ संदर्भानुसार, उद्देश्यपूर्ण ढंग से और केवल आयकर अधिनियम के दायरे में ही समझा जाना चाहिए। उनके अनुसार, इसका व्यापक अर्थ अपनाने से दीवानी कानून को पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं होगी और न ही हो सकती है। एक प्रकार से उन्होंने विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शर्मा के रुख का समर्थन किया और उन्होंने जोधा मल मामले के फैसले पर भी विशेष जोर दिया। श्री शर्मा द्वारा उद्धृत मामलों के अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता श्री स्याली ने हमारा ध्यान *(दिवंगत) नवाब सर मीर उस्मान अली खान बनाम संपत्ति कर आयुक्त, हैदराबाद*, 162 आई.टी.आर. 888 में प्रकाशित एक मामले की ओर आकर्षित किया। उन्होंने अपने इस तर्क का समर्थन करने के लिए कि किसी क़ानून में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि सामाजिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार शब्दों को लगातार अद्यतन किया जा सके, इस न्यायालय के एक हालिया निर्णय, *राज्य बनाम एस.जे. चौधरी*, [1996] 2 एस.सी.सी. 428, की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया।

बार में प्रस्तुत दलीलों को समझने के लिए, अधिनियम की प्रासंगिक धाराओं को प्रस्तुत करना आवश्यक है। हम नीचे पुराने अधिनियम की धारा 9(i) और नए अधिनियम की धारा 22, 27 और 56 प्रस्तुत करते हैं।

> "9(1) करदाता द्वारा 'संपत्ति से आय' शीर्षक के अंतर्गत किसी भी भवन या उससे संलग्न भूमि से युक्त संपत्ति के *वास्तविक* वार्षिक मूल्य पर कर देय होगा, जिसका वह स्वामी है, सिवाय ऐसी संपत्ति के उन भागों के जिन्हें वह अपने द्वारा किए जाने वाले किसी व्यवसाय, पेशे या धंधे के प्रयोजनों के लिए उपयोग करता है, जिसके लाभ कर योग्य हैं।"
>
> "22. *मकान संपत्ति से आय*- किसी भी भवन या उससे जुड़ी भूमि से युक्त संपत्ति का वार्षिक मूल्य, जिसका करदाता स्वामी है, ऐसी संपत्ति के उन हिस्सों को छोड़कर, जिन पर वह अपने द्वारा चलाए जा रहे किसी व्यवसाय या पेशे के प्रयोजनों के लिए कब्जा करता है, जिसके लाभ आयकर के लिए प्रभार्य हैं, "मकान संपत्ति से आय" शीर्षक के अंतर्गत आयकर के लिए प्रभार्य होगा।
>
> 27. धारा 22 से 26 के प्रयोजनों के लिए "मकान संपत्ति का स्वामी",

"वार्षिक शुल्क" आदि की परिभाषा।

(i) XXX XXX XXX XXX

(ii) XXX XXX XXX XXX

(iii) सहकारी समिति का वह सदस्य जिसे समिति की आवास निर्माण योजना के तहत कोई भवन या उसका कोई भाग आवंटित या पट्टे पर दिया गया है, उस भवन या उसके भाग का स्वामी माना जाएगा।

[संशोधन से पहले]

(iiii) किसी सहकारी समिति, कंपनी या व्यक्तियों के अन्य संघ का कोई सदस्य, जिसे समिति, कंपनी या संघ की आवास निर्माण योजना के तहत कोई भवन या उसका कोई भाग आवंटित या पट्टे पर दिया गया हो, उस भवन या उसके भाग का स्वामी माना जाएगा;

(iii ए) कोई व्यक्ति जिसे संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) की धारा 53 ए में निर्दिष्ट प्रकृति के अनुबंध के आंशिक निष्पादन में किसी भवन या उसके भाग पर कब्जा लेने या उसे अपने पास रखने की अनुमति दी गई है, उसे उस भवन या उसके भाग का स्वामी माना जाएगा;

(iii बी) कोई व्यक्ति जो किसी भवन या उसके किसी भाग में (माह-दर-महीने या एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए पट्टे के माध्यम से प्राप्त किसी अधिकार को छोड़कर) धारा 269 यूए के खंड (एफ) में निर्दिष्ट किसी लेन-देन के आधार पर प्राप्त करता है, उसे उस भवन या उसके किसी भाग का स्वामी माना जाएगा;

iv) XXX XXX XXX XXX

(v) XXX XXX XXX XXX

(vi) XXX XXX XXX XXX

56. *अन्य स्रोतों से आय* - (1) इस अधिनियम के अधीन कुल आय से बहिष्कृत न की जाने वाली प्रत्येक प्रकार की आय पर "अन्य स्रोतों से आय"

शीर्षक के अंतर्गत आयकर लगाया जाएगा, यदि वह धारा 14 के मद क से ऋण में निर्दिष्ट किसी भी शीर्ष के अंतर्गत आयकर के लिए प्रभार्य नहीं है।

(2) विविशेष रूप से, और उप-धारा (1) के प्रावधानों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, निम्नलिखित आय "अन्य स्रोतों से आय" शीर्षक के अंतर्गत आयकर के लिए प्रभार्य होगी, अर्थात् -

(i) XXX XXX XXX XXX

(iए) XXX XXX XXX XXX

(i बी) XXX XXX XXX XXX

(iसी) XXX XXX XXX XXX

(iडी) XXX XXX XXX XXX

(ii) XXX XXX XXX XXX

(iii) जहां कोई करदाता अपना उपकरण, संयंत्र या फर्नीचर तथा भवनों को किराए पर देता है, और भवनों का किराया उक्त मशीनरी, संयंत्र या फर्नीचर के किराए से अविभाज्य है, तो ऐसे किराए से होने वाली आय, यदि वह "व्यवसाय या पेशे के लाभ और आय" शीर्षक के अंतर्गत आयकर के लिए प्रभार्य नहीं है।

तथ्यों के विवरण और प्रतिपक्षों द्वारा प्रस्तुत दलीलों से यह स्पष्ट होता है कि विवाद अधिनियम की धारा 22 में प्रयुक्त शब्द 'जिसका करदाता स्वामी है' के अर्थ को लेकर है। हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि पुराने अधिनियम की धारा 9(i) मूलतः नए अधिनियम की धारा 22 के समान थी। हम यह भी कहना चाहेंगे कि पुराने अधिनियम की धारा 9 को नए अधिनियम में विभाजित करके कई अलग-अलग धाराओं, अर्थात् धारा 22 से 27 में पुनर्गठित किया गया है।

हमने बार द्वारा *जोधा मल* मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करने पर ध्यान दिया है, जो अधिनियम की पुरानी धारा 9(i) से संबंधित था। उस मामले में, इस न्यायालय को 'जिसका वह स्वामी है' शब्दों के अर्थ पर विचार करने का अवसर मिला था।

तथ्यों के आधार पर, न्यायालय को यह तय करना था कि क्या संपत्ति का पूर्व स्वीकृत स्वामी धारा 9 के तहत मकान संपत्ति पर आयकर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, भले ही उक्त संपत्ति पाकिस्तान (निष्क्रांत संपत्ति प्रशासन) अध्यादेश, 1949 की धारा 6(1) के तहत निष्क्रांत संपत्ति के संरक्षक को सौंप दी गई हो। उस मामले में राजस्व का तर्क था कि संरक्षक को मकान संपत्ति सौंपे जाने के बावजूद, कानूनी स्वामित्व उसमें करदाता के पास ही रहा और इसलिए, पुराने अधिनियम की धारा 9(1) लागू होती है। इस तर्क को इस न्यायालय ने खारिज कर दिया था। न्यायमूर्ति हेगड़े ने पीठ की ओर से बोलते हुए पृष्ठ 575 पर टिप्पणी की:

> "सवाल यह है कि इस धारा में जिस "मालिक" का जिक्र है, वह कौन है? क्या वह व्यक्ति है जिसमें संपत्ति निहित है या वह व्यक्ति है जो संपत्ति में किसी लाभकारी हित का हकदार है? यह याद रखना जरूरी है कि धारा 9 संपत्ति से होने वाली आय पर लागू होती है, न कि संपत्ति में किसी व्यक्ति के हित पर। किसी संपत्ति का स्वामित्व दो व्यक्तियों के पास नहीं हो सकता, जिनमें से प्रत्येक का उस पर स्वतंत्र और अनन्य अधिकार हो। इसलिए, धारा 9 के प्रयोजन के लिए, मालिक वह व्यक्ति होना चाहिए जो मालिक के अधिकारों का प्रयोग मालिक की ओर से नहीं, बल्कि अपने अधिकार से कर सकता है।"

विद्वान न्यायाधीश ने टिप्पणी की कि "यह सत्य है कि कर कानूनों की व्याख्या में न्यायसंगत विचार अप्रासंगिक हैं। लेकिन, अन्य सभी कानूनों की तरह, इन कानूनों की भी व्याख्या तर्कसंगत और न्यायसंगत रूप से की जानी चाहिए।" पृष्ठ 577 पर यह कहा गया कि "कर भुगतान के लिए उत्तरदायी व्यक्ति का निर्धारण करने हेतु न्यायालय द्वारा निर्धारित कसौटी यह पता लगाना है कि उस आय का हकदार कौन है।" पृष्ठ 578 पर यह टिप्पणी की गई: "कोई भी इस बात से इनकार नहीं करता कि पाकिस्तान से विस्थापित व्यक्ति को उस संपत्ति में अवशिष्ट अधिकार प्राप्त है जिसे उसने पाकिस्तान में छोड़ा था। लेकिन वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या उस अधिकार को अधिनियम की धारा 9 के अर्थ में स्वामित्व माना जा सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वह धारा संपत्ति की आय को मालिक के हाथों में लाने का प्रयास करती है। अतः, उस धारा का मुख्य उद्देश्य आय की प्राप्ति है। धारा 9 में "मालिक" शब्द का जो अर्थ हम देते हैं, वह ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह प्रावधान उत्पीड़न का साधन बन जाए।" यह अधिनियम के अंतर्निहित सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।"

हमारी राय में, इस न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियाँ स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति पर दायित्व निर्धारित करती हैं जो संपत्ति से अपने अधिकार के तहत आय प्राप्त करता है या प्राप्त करने का हकदार है। इसके बावजूद, विभिन्न अंचलों के निर्धारण अधिकारियों ने इस मामले में निर्धारित सिद्धांत का एकसमान रूप से पालन करने के बजाय, अधिनियम की धारा 22 के दायरे पर संबंधित अंचलों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के आधार पर अलग-अलग, बिल्कुल विपरीत दृष्टिकोण अपनाए हैं। इलाहाबाद, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, कलकत्ता और पटना के उच्च न्यायालयों ने *जोधा मल* के मामले में निर्धारित सिद्धांत को सही ढंग से समझते हुए दृष्टिकोण अपनाया है, जबकि बॉम्बे, दिल्ली और आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालयों ने जोधा मल के मामले में तथ्यों के आधार पर गलत तरीके से भेद करते हुए एक अलग दृष्टिकोण अपनाया है।

कला रानी के मामले (उपरोक्त) में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने *जोधा मल* के मामले में इस न्यायालय के फैसले का हवाला देते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "अतः, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत किसी व्यक्ति का मूल्यांकन किए जाने से पहले, उसके पक्ष में विक्रय विलेख के आधार पर उसका स्वामी होना आवश्यक है। वास्तव में, अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत जिस पर कर लगाया जाता है, वह मकान संपत्ति से होने वाली आय या उस संपत्ति का वार्षिक मूल्य है जिसका करदाता स्वामी है।"

उच्च न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि बिक्री के समझौते के अनुसरण में संपत्ति पर मात्र कब्जा होना अधिनियम की धारा 22 के तहत किसी भी आय पर करदाता पर कर लगाने के लिए पर्याप्त नहीं है।

पटना उच्च न्यायालय ने *सहाय प्रॉपर्टीज* के मामले (उपरोक्त) में इस मामले का विस्तारपूर्वक निपटारा किया है। वास्तव में, पटना उच्च न्यायालय की दीवानी अपील संख्या 5874-76, 1983 के फैसले के खिलाफ विशेष अनुमति से दीवानी अपीलें दायर की गई थीं। हालांकि, उन अपीलों को 20.3.1996 को बिना किसी निर्णय के वापस ले लिया गया मानकर खारिज कर दिया गया था।

उस मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार थे कि करदाता कंपनी ने फरवरी 1962 में कुछ अचल संपत्ति का अधिग्रहण किया। करदाता ने पूरी राशि का भुगतान कर दिया था और विक्रय के लिए अनुबंधित संपूर्ण संपत्ति पर उसका वास्तविक भौतिक कब्जा था। विक्रेता ने

करदाता को संपत्ति का उपयोग अपनी इच्छानुसार करने और उसके संपूर्ण उपयोग के अधिकार प्राप्त करने का अधिकार दिया था, केवल इस शर्त के साथ कि करदाता के अनुरोध पर भारतीय पंजीकरण अधिनियम के अनुसार पंजीकरण सहित एक औपचारिक अंतरण विलेख निष्पादित किया जाएगा और एक बार अनुरोध किए जाने पर, अंतरणकर्ता का यह दायित्व था कि वह ऐसा अंतरण विलेख निष्पादित करे और उसे पंजीकृत कराए। करदाता पर संपत्ति से होने वाली आय के संबंध में धारा 22 के तहत मूल्यांकन किया गया था, लेकिन न्यायाधिकरण ने माना कि करदाता संपत्ति का स्वामी नहीं था और उस पर इस प्रकार मूल्यांकन नहीं किया जा सकता था।

पटना उच्च न्यायालय ने *जोधा मल* मामले में इस न्यायालय के फैसले और अन्य कई उच्च न्यायालयों के फैसलों का हवाला दिया है। उच्च न्यायालय ने "स्वामित्व" की अवधारणा पर भी विचार किया और जी.डब्ल्यू. पैटन की न्यायशास्त्र संबंधी रचनाओं, डायस की न्यायशास्त्र संबंधी रचनाओं, स्ट्राउड की न्यायिक शब्दकोश और पोलॉक की न्यायशास्त्र संबंधी रचनाओं के अंशों का उल्लेख किया। हम पटना उच्च न्यायालय के फैसले से कुछ उपयोगी अंश उद्धृत कर सकते हैं।

विद्वान न्यायाधीशों ने पृष्ठ 361 पर टिप्पणी की:

> "अतः, इस वैधानिक प्रावधान में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि धारा के अंतर्गत कर स्वामित्व के संबंध में है। लेकिन यह मामला उतना सरल नहीं है जितना दिखता है। इससे हमारे सामने स्वामित्व के अधिक जटिल प्रश्न की स्थिति उत्पन्न होती है। क्या मूल्यांकन उस व्यक्ति के हाथों किया जाना चाहिए जिसके पास केवल कानूनी स्वामित्व का नाममात्र का अधिकार है या उस व्यक्ति के हाथों जिसके पास व्यावहारिक अर्थों में संपत्ति के स्वामी के अधिकार हैं? इस धारा के संदर्भ में "स्वामी" शब्द का अर्थ केवल व्यावहारिक अर्थों में स्वामी के रूप में उपभोग करना है - एक ऐसा व्यक्ति जो स्वामी के अधिकारों का प्रयोग कर सकता है और अपने लाभ के लिए संपत्ति से होने वाली आय का हकदार है। यह सर्वविदित है, और दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं में कोई मतभेद नहीं था, कि धारा की इस प्रकार व्याख्या नहीं की जा सकती कि यह उत्पीड़न का साधन बन जाए, जैसा कि हेगड़े, न्यायमूर्ति ने *जोधा मल* मामले (1971) 82 आई.टी.आर. 570 (एससी) में कहा था।
>
> हम इस कानूनी स्थिति से भलीभांति परिचित हैं कि कर के संबंध में कोई

समानता नहीं होती। कर के बारे में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसमें कुछ भी अंतर्निहित नहीं होना चाहिए, न ही कुछ निहित होना चाहिए। हम केवल प्रयुक्त भाषा का निष्पक्ष रूप से विश्लेषण कर सकते हैं। फिर भी, कर कानूनों की व्याख्या तर्कसंगत और न्यायसंगत तरीके से की जानी चाहिए। यह बात स्वयं सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा स्पष्ट हो चुकी है।

इसलिए, हमें अधिनियम की धारा 22 की भाषा का मूल्यांकन और व्याख्या उस विशेष धारा के संदर्भ में करनी होगी, और उस संदर्भ पर हम आगे चलकर अधिक उपयुक्त स्थान पर चर्चा करेंगे।

इस बीच, "स्वामित्व" की अवधारणा पर विचार करना अनुचित नहीं होगा। आख़िर स्वामित्व है क्या? रोमन कानून से लेकर वर्तमान अंग्रेजी कानून तक, जिसमें मध्ययुगीन काल में विभिन्न सूत्र शामिल रहे हैं, को पढ़ने पर कानूनी दृष्टि से जो स्थिति उभरती है, वह यह है: वर्तमान में मान्यता प्राप्त स्वामी के पूर्ण अधिकार इस प्रकार हैं:

"(क) उपभोग की शक्ति (उदाहरण के लिए, किसी वस्तु के उपयोग का निर्धारण, उपज के साथ अपनी इच्छानुसार व्यवहार करने की शक्ति, नष्ट करने की शक्ति);

(ख) कब्ज़ा जिसमें दूसरों को बाहर करने का अधिकार शामिल है;

(ग) जीवित रहते संपत्ति को अंतरित करने या उसे गिरवी रखने की शक्ति;

(घ) वसीयत द्वारा संपत्ति छोड़ने की शक्ति।

इन शक्तियों में से सबसे महत्वपूर्ण है दूसरों को बाहर रखने का अधिकार। संपत्ति का अधिकार मूलतः किसी वस्तु के उपयोग या उसे संभालने से अन्य व्यक्तियों को बाहर रखने की गारंटी है... लेकिन क्या प्रत्येक स्वामी के पास उपरोक्त सभी अधिकार होते हैं? किसी विशेष स्वामी की शक्तियां कानून द्वारा या किसी अन्य के साथ किए गए समझौते द्वारा प्रतिबंधित हो सकती हैं। (जी.डब्ल्यू. पैटन न्यायशास्त्र में, चौथा संस्करण, पृष्ठ 517-18 देखें)।

स्वामित्व की अवधारणा पर चर्चा करते हुए और इस संबंध में उदाहरण स्वरूप

मामलों और नियमों का उल्लेख करते हुए, पैटन पृष्ठ 577 पर खंड (x) में कहते हैं:

"किसी वस्तु का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए, उस वस्तु पर उतना भौतिक नियंत्रण रखना आवश्यक है जितना वह रखने में सक्षम है, और दूसरों को उससे दूर रखने का इरादा प्रदर्शित करना आवश्यक है: ..."

इस संदर्भ में टुबंटिया: *यंग बनाम हिचेंस* और *पियर्सन बनाम पोस्ट*, [1805] 3 केन्स 175 (न्यूयॉर्क का सर्वोच्च न्यायालय) के मामलों का उल्लेख किया गया है .....

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि जहां किसी संपत्ति का स्वामित्व प्राप्त किया जाता है, और उस पर उतना आवश्यक नियंत्रण रखने का अधिकार प्राप्त किया जाता है जितना वह रखने में सक्षम है, वहां दूसरों को उससे दूर रखने का इरादा ही स्वामित्व का तत्व प्रदर्शित करता है।

इसी तरह का प्रभाव और अधिक सशक्त प्रभाव डायस द्वारा न्यायशास्त्र पर लिखे गए विषय में देखा जा सकता है (चौथा संस्करण, पृष्ठ 400 पर):

"अतः, ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि के स्वामित्व का विचार मूलतः उस पर कब्ज़ा रखने और उसे प्राप्त करने के 'बेहतर अधिकार' से संबंधित है, जबकि चल संपत्ति के मामले में यह अवधारणा अधिक निरपेक्ष है। वास्तविक कब्ज़े का तात्पर्य विपरीत सिद्ध होने तक उसे अपने पास रखने के अधिकार से है, और इस हद तक कब्ज़ाधारक को स्वामी माना जाता है।"

"फिर, पृष्ठ 404 पर, विद्वान लेखक कहते हैं:

'वैधानिक' स्वामित्व, जिसे सामान्य विधि में मान्यता प्राप्त है, और 'न्यायसंगत' स्वामित्व, जिसे स्वामित्व में मान्यता प्राप्त है, के मध्य भेद की ओर भी विशेष ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए। यह स्थिति मुख्यतः तब उत्पन्न होती है जब कोई न्यास विद्यमान होता है, जो अंग्रेज़ी विधि के विशिष्ट ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। न्यास का आशय स्वामित्व के दो समवर्ती प्रकारों के अस्तित्व से है— एक, विधि के अधीन न्यासी (न्यासी) का स्वामित्व, तथा दूसरा, स्वामित्व के अधीन लाभार्थी का स्वामित्व।"

इस मामले में हमारा संबंध न तो न्यायसंगत सिद्धांतों के अंतर्गत और न ही भारतीय न्यास अधिनियम में निहित कानून के अंतर्गत किसी न्यास से है। क्योंकि, लाभार्थी स्वयं किसी तीसरे व्यक्ति के लिए अपने हित का न्यासी हो सकता है, ऐसी स्थिति में उसका न्यायसंगत स्वामित्व उसके लिए उतना ही लाभहीन होता है जितना कि न्यासी के लिए कानूनी स्वामित्व। अतः, स्वामित्व के संदर्भ में, कानूनी और न्यायसंगत स्वामित्व के बीच का अंतर उनके निर्माण और कार्य को नियंत्रित करने वाले ऐतिहासिक कारकों में निहित है; लाभ के संदर्भ में, अंतर मात्र अधिकार, चाहे वह कानूनी हो या न्यायसंगत, और लाभकारी अधिकार के बीच होता है" (डायस न्यायशास्त्र में, चौथा संस्करण, पृष्ठ 404-405 देखें)।

इसलिए, हमें उन न्यासों से जुड़े प्रश्नों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है जहाँ कोई व्यक्ति संपत्ति रखता है और अन्य कानूनी लाभार्थियों के लिए न्यास के रूप में आय प्राप्त करता है। मुख्य मुद्दा यह है कि क्या, जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी विशेष मामले में वास्तविक कब्ज़ा, विपरीत सिद्ध होने तक ऐसे कब्ज़े को बनाए रखने का अधिकार देता है, और जब तक ऐसा सिद्ध नहीं होता, उस हद तक कब्ज़ाधारक को मालिक माना जाता है।

संयोगवश, यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने *जोधा मल* (1971) 82 आई.टी.आर. 570 के मामले में केवल यह उल्लेख किया कि स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश में स्वामित्व की कई परिभाषाएँ और उदाहरण दिए गए हैं, तथापि उस मामले में अपनाए गए व्यावहारिक दृष्टिकोण के कारण उसने विवरणों में जाने से परहेज किया, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे और विस्तार से चर्चा करेंगे। हमारा मानना है कि इस मामले पर बार में विस्तार से चर्चा होने के बाद, स्ट्राउड द्वारा दी गई "स्वामित्व" की परिभाषाओं का पूर्ण उदाहरण देना उचित होगा। ऐसी ही एक परिभाषा यह है कि किसी संपत्ति का "मालिक" या "स्वामित्वकर्ता" वह व्यक्ति होता है जिसमें (उसकी सहमति से) वह संपत्ति उस समय लाभकारी रूप से निहित होती है, और जिसके पास उस पर कब्जा, नियंत्रण या उपयोग का अधिकार होता है, उदाहरण के लिए, पट्टेदार अवधि के दौरान पट्टे पर दी गई संपत्ति का मालिक होता है। स्ट्राउड द्वारा दी गई एक अन्य परिभाषा यह है कि:

"'मालिक' शब्द किसी भी भूमि या संपत्ति के किराए या लाभ के पूरे या किसी

भी हिस्से पर कब्जा रखने या उसे प्राप्त करने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता है; या ऐसी भूमि या संपत्ति पर वार्षिक या कम अवधि के किरायेदार या इच्छाधारी किरायेदार के अलावा किसी अन्य रूप में कब्जा रखने वाले व्यक्ति पर लागू होता है। (स्ट्रॉड का न्यायिक शब्दकोश, तीसरा संस्करण, खंड 3, पृष्ठ 2060)।

अतः प्रत्येक व्यक्ति के दृष्टिकोण से न्यायिक सिद्धांत यह है कि अधिनियम की धारा 22 के अर्थ में "स्वामित्व" शब्द का व्यावहारिक अर्थ निर्धारित किया जाए, और इस वैधानिक प्रावधान के प्रयोजन के लिए स्वामित्व के दायरे से कानूनी अधिकार को बाहर रखा जाए। कारण स्पष्ट है। आख़िरकार, कर या कर निर्धारण के लिए अधिक सटीक रूप से किसे चुना जाना चाहिए - उस व्यक्ति को जिसे धन प्राप्त होता है और जिसका संपत्ति पर वास्तविक नियंत्रण है, और जिसके कब्जे के दावे को खारिज करने का किसी अन्य व्यक्ति के पास बेहतर अधिकार नहीं है, या उस व्यक्ति को जिसे कानूनी भाषा में, मान लीजिए, एक हजार वर्षों के बाद कब्जे की अवधि समाप्त होने पर शेष उत्तराधिकारी माना जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर करदाता के पक्ष में देना न केवल स्पष्ट अन्याय होगा, बल्कि इससे बेतुकी असुविधा भी होगी और विधायिका को एक निरर्थक कानून का हिस्सा होने का कलंक लगेगा। यह तर्कसंगत और तार्किक रूप से कल्पना करना असंभव है कि कोई व्यक्ति जो संपत्ति पर वास्तविक भौतिक नियंत्रण रखता है और संपत्ति की संपूर्ण आय और उपयोग का अधिकार अपने स्वयं के उपयोग के लिए प्राप्त करता है, न कि किसी अन्य व्यक्ति के उपयोग के लिए, और प्राप्त आय के निपटान की पूर्ण शक्ति रखता है, उसे केवल इसलिए कर से मुक्त क्यों माना जाए कि कानूनी स्वामित्व का कोई अवशेष या स्वामित्व का कोई खोखला हिस्सा दीर्घकाल में किसी अन्य व्यक्ति को अवशिष्ट स्वामित्व की शक्ति प्रदान कर सकता है, जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, जो कि यहां भी मामला नहीं है। ऊपर उद्धृत समझौते के खंड 4 को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि संपत्तियों का भौतिक कब्ज़ा करदाता को अंतरित हो चुका है या अंतरित माना जाता है, और करदाता को यह कब्ज़ा हमेशा के लिए पूर्ण रूप से प्राप्त होगा और वह इसका उपयोग अपनी इच्छानुसार किसी भी तरीके से कर सकता है। करदाता को सभी आय और लाभ प्राप्त होंगे, साथ ही संपत्तियों और उनसे प्राप्त आय के निपटान का पूर्ण अधिकार भी होगा। क्या तब यह कहा जा सकता है कि आय प्राप्तकर्ता, यानी करदाता, को संपत्ति पर पूर्ण और अनन्य नियंत्रण प्राप्त है, और तथाकथित विक्रेता की ओर से कोई रोक-टोक नहीं

है, जबकि वास्तव में कानून के तहत विक्रेता को ऐसा करने का अधिकार नहीं था, जैसा कि हम आगे दिखाएंगे, इसलिए वह अधिनियम की धारा 22 के कराधान प्रावधान से मुक्त होगा? हमारी राय में इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक है। इसका कारण सरल है। प्रतिफल राशि का पूरा भुगतान हो चुका है। करदाता को संपत्ति का अनन्य और पूर्ण कब्ज़ा प्राप्त हो चुका है। उसे आय का अपनी इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकार दिया गया है। उसे संपत्ति का निपटान करने और यहां तक कि उसे अंतरित करने का भी अधिकार दिया गया है। न्यायाधिकरण द्वारा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 या धारा 55 का संदर्भ केवल इस तथ्य पर बल देता है कि विधिवत पंजीकृत अंतरण विलेख के बिना कानूनी स्वामित्व अंतरित नहीं होता है। समझौता लिखित में है और संपत्ति का मूल्य निश्चित रूप से सौ रुपये से अधिक है। अतः, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 करदाता को अंतरण द्वारा पूर्ण स्वामित्व प्रदान करने से रोकती है। हालांकि, इससे करदाता का संपत्ति पर कब्जा बनाए रखने, उससे किराया और लाभ प्राप्त करने और संपूर्ण आय को अपने उपयोग के लिए विनियोजित करने का अधिकार समाप्त नहीं होता है। तथाकथित विक्रेता को कानूनन करदाता (तथाकथित क्रेता) को बेदखल करने या उसके स्वामित्व पर प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं है। इसी व्यावहारिक उद्देश्य के लिए संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 में धारा 53 ए जोड़कर आंशिक निष्पादन के अधिकार का सिद्धांत लागू किया गया था। उसमें, धारा विशेष रूप से आंशिक निष्पादन के सिद्धांत को उन समझौतों पर लागू करने की अनुमति देती है, जिन्हें पंजीकृत करना आवश्यक होते हुए भी पंजीकृत नहीं किया गया है, और उन हस्तांतरणों पर भी जो किसी कानून द्वारा निर्धारित तरीके से पूरे नहीं किए गए हैं। इसलिए, यह धारा उन मामलों पर लागू होती है जहां अंतरण कानून द्वारा आवश्यक तरीके से पूरा नहीं किया गया है, जब तक कि प्रक्रिया का ऐसा अनुपालन न करने से अंतरण शून्य न हो जाए। हालांकि, एक ऐसे समझौते में अंतर है जो अपने आप में शून्य है और एक ऐसे समझौते में जो विक्रेता द्वारा किए जा सकने वाले किसी कार्य के अभाव में शून्य है, जिसके लिए उसने स्पष्ट या परोक्ष रूप से अनुबंध किया था। और जहां कोई विक्रेता अपनी संपत्ति का हिस्सा, जिसमें जमीन भी शामिल है, बेचने के लिए सहमत होता है, अनुबंध में एक निहित शर्त होती है कि वह ऐसे हस्तांतरणों के लिए आवश्यक राजस्व अधिकारियों से स्वीकृति के लिए आवेदन करेगा और न्यायालय उसे ऐसा करने का निर्देश देगा। यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा समझौता शून्य है क्योंकि कोई

स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई है। इस मामले में, खंड के संदर्भ में... समझौते के अनुच्छेद 5 के अनुसार, यह देखा जाएगा कि करदाता को यह विकल्प दिया गया था कि वह अपनी इच्छा अनुसार सहाय परिवार (विक्रेता) द्वारा उसके पक्ष में विधिवत पंजीकृत अंतरण की मांग करे और आधिकारिक अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करवाए। करदाता ने अपने विकल्प का प्रयोग नहीं किया है, जिसके कारण उसे ही बेहतर पता हैं - संभवतः परिस्थितियों के अनुसार उपयोग करने के लिए उसके पास दोहरा हथियार मौजूद हो। क्या यह कहा जा सकता है कि करदाता की चूक के लिए वह यह कहने का हकदार होगा कि वह व्यावहारिक रूप से संपत्ति का स्वामी नहीं है, जो हर समय किराया प्राप्त करता है, हर समय अपने उद्देश्यों के लिए उपयोग करता है और विक्रेता के कहने पर उसका कोई हस्तक्षेप नहीं होता है? क्या यह अधिनियम की धारा 22 के सार और भावना के सही अर्थ और व्याख्या के लिए एक व्यावहारिक और तार्किक दृष्टिकोण हो सकता है? हमारी राय में, इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक है और करदाता के विरुद्ध है। विक्रेता सहित किसी भी व्यक्ति की ओर से बिना किसी बाधा या रुकावट के अनुबंध के तहत सभी लाभ प्राप्त करने और अभी भी सभी लाभ प्राप्त करने के बाद, जो विक्रेता संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53 ए के मद्देनजर नहीं कर सकता था, करदाता अब यह कहकर पीछे नहीं हट सकता कि अपनी मर्जी से विलेख पंजीकृत न कराने की चूक के कारण वह अधिनियम की धारा 22 के अर्थ में स्वामी नहीं था। यह दोहराना शायद उचित होगा कि इन्हीं तथ्यों के कारण न्यायिक सिद्धांत उभर कर सामने आए हैं, जिनमें कहा गया है कि स्वामित्व की शक्तियों में से एक सबसे महत्वपूर्ण शक्ति दूसरों को कब्जे से वंचित करने का अधिकार है, और संपत्ति का अधिकार अनिवार्य रूप से किसी वस्तु के उपयोग या संचालन से अन्य व्यक्तियों को वंचित करने की गारंटी है। इस अर्थ में, करदाता स्वयं प्रश्नगत संपत्ति का स्वामी बन गया। हमारे विचार में, इसके विपरीत कोई भी निर्णय सामान्य कानून या न्यायसंगतता के न्यायिक सिद्धांत के अनुरूप नहीं होगा। दोनों ही मामलों में, यह अधिनियम की धारा 22 के आशय और उद्देश्य के अधीन नहीं होगा, जिसके संबंध में, जैसा कि हमने पहले ही कहा है, हम प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रख सकते हैं और कर कानूनों की व्याख्या उचित और न्यायसंगत रूप से की जानी चाहिए। अब तक हमने इस मामले को न्यायिक सिद्धांतों के आधार पर इस प्रकार निपटाया है मानो यह पहली बार का मामला हो। इसलिए, अब हमें इस विषय पर न्याय दृष्टांत का उल्लेख करना होगा।

अंततः, विद्वान न्यायाधीशों ने यह माना कि उस मामले में करदाता अधिनियम की धारा 22 में प्रयुक्त "स्वामी" शब्द के सही अर्थ के अंतर्गत आता है और इसलिए, मकान संपत्ति से होने वाली आय पर स्वामी के रूप में कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। पटना उच्च न्यायालय के इस निर्णय का अनुसरण उसी उच्च न्यायालय ने *कृष्णा लाल अजमानी* के मामले (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय में किया।

महारानी योगेश्वरी कुमारी के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने फिर से उसी प्रश्न पर विचार किया और विभिन्न निर्णयों का हवाला देते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया:

> "आयकर अधिनियम की धारा 22 के तहत, करदाता द्वारा स्वामित्व वाली किसी भी इमारत या उससे जुड़ी भूमि सहित संपत्ति के वार्षिक मूल्य से संबंधित आय पर प्रभार निर्धारित किया गया है, सिवाय उस संपत्ति के उन हिस्सों के जिनका वह अपने द्वारा चलाए जा रहे किसी व्यवसाय या पेशे के प्रयोजनों के लिए उपयोग करता है। इस संपत्ति के लाभ "मकान संपत्ति से आय" शीर्षक के अंतर्गत आयकर के लिए प्रभार्य हैं। अतः प्रश्न उठता है कि क्या "जिसका करदाता स्वामी है" शब्द केवल पंजीकृत स्वामी पर लागू होते हैं या उस व्यक्ति पर भी लागू होते हैं जिसके पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया गया है, लेकिन विक्रय समझौता निष्पादित किया गया है, संपत्ति का कब्जा दिया गया है और विक्रय के लिए प्रतिफल का भुगतान किया गया है। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53 ए में यह प्रावधान है कि जब कोई व्यक्ति अपने द्वारा या अपनी ओर से हस्ताक्षरित लिखित अनुबंध द्वारा किसी अचल संपत्ति को प्रतिफल के बदले अंतरित करने का अनुबंध करता है, जिससे अंतरण के लिए आवश्यक शर्तें उचित निश्चितता के साथ निर्धारित की जा सकती हैं, और अन्तरिति ने अनुबंध के आंशिक निष्पादन में संपत्ति या उसके किसी भाग पर कब्जा कर लिया है, या अन्तरिति, पहले से ही कब्जे में रहते हुए, अनुबंध के आंशिक निष्पादन में कब्जे में बना रहता है और अनुबंध को आगे बढ़ाने के लिए कोई कार्य किया है, और अन्तरिति ने अनुबंध के अपने हिस्से का निष्पादन कर दिया है या निष्पादन करने को तैयार है, तो भले ही अनुबंध, हालांकि पंजीकृत होना आवश्यक है, पंजीकृत नहीं किया गया है, या जहां अंतरण का कोई दस्तावेज है, वहां अंतरण उस समय लागू कानून द्वारा निर्धारित तरीके से पूरा नहीं किया गया है, अंतरणकर्ता या उसके अधीन दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति अन्तरिति और उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध उस संपत्ति के संबंध में किसी भी अधिकार को लागू

करने से वंचित होगा, जिस पर अन्तरिति ने कब्जा कर लिया है या कब्जा बनाए रखा है, सिवाय उस अधिकार के जो अनुबंध की शर्तों द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है। उपर्युक्त धारा के प्रावधान में यह प्रावधान है कि उस धारा की कोई भी बात प्रतिफल के बदले संपत्ति अंतरित करने वाले व्यक्ति के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगी, जिसे अनुबंध या उसके आंशिक निष्पादन की कोई सूचना नहीं है। यदि यह मान लिया जाए कि अंतरण न होने पर भी अंतरणकर्ता ही स्वामी बना रहता है, तब भी यह प्रश्न उठता है कि मालिक को आय प्राप्त नहीं हुई है और इसलिए, क्या अन्तरिति का मूल्यांकन इस आधार पर किया जा सकता है कि आय का विनियोजन परिवर्तन हुआ है या अंतरणकर्ता का प्राप्त आय पर कोई अधिकार नहीं रह गया है? यह धारा अंतरणकर्ता को संपत्ति पर अपने अधिकार को लागू करने से रोकती है। *हमदा अम्माल बनाम अवदियाप्पा पाथर* [1991] 1 एस.सी.सी. 715 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि पंजीकरण के बाद दस्तावेज का प्रभाव विक्रय विलेख के निष्पादन की तिथि से ही प्रभावी होता है। हालांकि आयकर कानून के तहत स्वामित्व का लाभ अज्ञात है, फिर भी यदि आय का आकलन उस अंतरणकर्ता के हाथों में किया जाता है जिसने संपत्ति से कोई आय प्राप्त नहीं की है, तो क्या ऐसे अंतरणकर्ता को कर भुगतान के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है? विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णयों में अलग-अलग मत व्यक्त किए गए हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कलकत्ता, बॉम्बे, दिल्ली और इलाहाबाद उच्च न्यायालयों का मत एक ओर है, जबकि *सीआईटी बनाम नवाब मीर बरकत अली खान* (1974) टैक्स एल.आर. 90 के मामले में आंध्र प्रदेश न्यायालय और *रामकुमार मिल्स पी. लिमिटेड बनाम सीआईटी* (1989) 180 आई.टी.आर. 464 के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय का मत भिन्न है। जहां तक *उस्मान अली खान* (1986) 162 आई.टी.आर. 888 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लिए गए मत का संबंध है, वह धन कर अधिनियम के संदर्भ में था, जहां धारा की भाषा भिन्न थी। धारा 53ए किसी अंतरणकर्ता को पूर्ण प्रतिफल प्राप्त करने और अनुबंध के तहत कब्जा सौंपने के बाद स्वामी के अधिकारों का प्रयोग करने से रोकती है। अंतरणकर्ता, ऐसे मामले में जहां उसने दस्तावेज निष्पादित किया है, प्रतिफल प्राप्त किया है और संपत्ति का कब्जा भी सौंप दिया है, स्वामी के किसी भी अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है। इस न्यायालय ने *राजपूताना होटल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य* (खंड पीठ दीवानी रिट याचिका संख्या 511, 1989, दिनांक 27 मई, 1992) के मामले में

राजस्थान भूमि और भवन कर अधिनियम, 1964 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए यह माना है कि जो व्यक्ति किराया प्राप्त करने का हकदार है, वह संपत्ति के संबंध में कर योग्य है, भले ही वह उसके नाम पर पंजीकृत न हो।

इस मामले पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। आयकर अधिनियम के तहत, निर्धारण प्राधिकारी को वास्तविक स्वामी के नाम पर आय का आकलन करने का अधिकार है। यदि 'ए' किसी संपत्ति को 'एक्स' के नाम पर खरीदता है, तो केवल इसलिए कि संपत्ति 'एक्स' के नाम पर पंजीकृत है, 'ए' अपने दायित्व से बच नहीं सकता। दूसरा, साझेदारी में साझेदारों द्वारा संपत्ति का योगदान करने पर वह संपत्ति साझेदारी की संपत्ति बन जाती है, ऐसे में पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होती। इस स्थिति में आय का आकलन साझेदारी फर्म के नाम पर किया जाना चाहिए, न कि संपत्ति का योगदान करने वाले व्यक्तियों के नाम पर। तीसरा, यदि अन्तरिति को आय प्राप्त हुई है और उस संपत्ति से प्राप्त आय का आकलन पहले ही संपत्ति से प्राप्त आय के रूप में किया जा चुका है, तो क्या धारा 22 को अंतरणकर्ता के विरुद्ध ऐसी आय के संबंध में पुनः लागू किया जा सकता है? चौथा, सहकारी समिति के मामले में, उसके सदस्यों को आवंटन पत्रों के आधार पर संपत्ति दी जाती है, जो पंजीकृत हो भी सकते हैं और नहीं भी। इसके बाद सदस्य संपत्ति को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अंतरित कर देते हैं और यदि यह माना जाता है कि केवल पंजीकृत स्वामी या समिति ही कर के दायरे में आ सकती है, तो आय का लाभ उठाने वाला व्यक्ति कर दायित्व से मुक्त हो जाएगा। पांचवां, यदि यह माना जाए कि कर का भुगतान करने के लिए केवल पंजीकृत स्वामी ही उत्तरदायी है जबकि आय अन्तरिति को प्राप्त होती है, तो अन्तरिति आय का आनंद तो उठाएगा लेकिन कर पंजीकृत स्वामी से वसूला जाएगा, जो कर का भुगतान करने में सक्षम हो भी सकता है और नहीं भी। छठा, अधिभावी स्वामित्व द्वारा आय का विचलन हो सकता है, जैसा कि *सविता मोहन* (1985) 154 आई.टी.आर. 449 (राजस्थान) के मामले में विचार किया गया था। सातवां, यदि संपत्ति किसी न्यास के नाम पर है और लाभार्थी आय के एक विशिष्ट हिस्से का हकदार है, तो क्या अधिनियम के अन्य प्रावधान अप्रभावी माने जा सकते हैं? आठवां, इसी तरह के कुछ अन्य उदाहरण भी हो सकते हैं।

हम यह आवश्यक नहीं समझते कि समान दृष्टिकोण अपनाने वाले अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों से अंश उद्धृत किए जाएँ।

अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा ग्रहण किया गया विपरीत दृष्टिकोण मुख्यतः इस आधार पर था कि जब तक संपत्ति का अंतरण करने वाला कोई पंजीकृत विलेख नहीं होता, तब तक संपत्ति के कब्जे अथवा उपभोग में रहने वाले व्यक्ति को विधिक स्वामी नहीं माना जा सकता और, परिणामस्वरूप, उसे अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत कर अदा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

हमारे मत में, इस न्यायालय द्वारा *जोधा मल* के मामले में प्रतिपादित विधि को पंजाब और हरियाणा, पटना, राजस्थान आदि के उच्च न्यायालयों द्वारा सही रूप में समझा गया है। धारा 22 के संदर्भ में विक्रय विलेख के पंजीकरण की आवश्यकता अपेक्षित नहीं है।

इस चरण पर, हम श्री स्याली द्वारा उद्धृत उस निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं, जो विधान में प्रयुक्त शब्दों की अद्यतन व्याख्या से संबंधित है। *राज्य (सी.बी.आई., नई दिल्ली के माध्यम से) बनाम एस जे. चौधरी*, [1996] 2 एस.सी.सी. 428 में, इस न्यायालय ने अद्यतन व्याख्या के समर्थन में निम्नलिखित अंश को अनुमोदन सहित उद्धृत किया है।

> *फ्रांसिस बेनियन* द्वारा लिखित "वैधानिक व्याख्या", द्वितीय संस्करण, धारा 288, जिसका शीर्षक है "यह अनुमान कि अद्यतन निर्माण दिया जाना चाहिए" में एक नियम इस प्रकार बताया गया है: (पृष्ठ 617)
>
> "x x x x x x x x
>
> (2) यह माना जाता है कि संसद का इरादा है कि न्यायालय किसी वर्तमान अधिनियम पर ऐसी व्याख्या लागू करे जो अधिनियम के प्रारंभिक रूप से तैयार होने के बाद से हुए परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए उसके शब्दों को लगातार अद्यतन करती रहे (एक अद्यतन व्याख्या)। यद्यपि यह कानून बना रहता है, इसे हमेशा लागू रहने वाला माना जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि किसी भी तिथि पर इसके प्रयोग में, अधिनियम की भाषा, यद्यपि अनिवार्य रूप से अपने समय में अंतर्निहित है, फिर भी इसे वर्तमान कानून के रूप में मानने की आवश्यकता के अनुसार व्याख्या की जानी चाहिए।
>
> "x x x x x x x x
>
> आगे की टिप्पणियों में यह बताया गया है कि एक सतत क्रिया को हमेशा क्रियाशील माना जाता है। इसके अलावा, यह भी कहा गया है: (पृष्ठ 618-619)

"किसी भी वर्तमान अधिनियम की व्याख्या करते समय, व्याख्याकार को यह मानकर चलना चाहिए कि संसद का इरादा था कि भविष्य में अधिनियम को इस प्रकार लागू किया जाए जिससे मूल उद्देश्य को सार्थक रूप से साकार किया जा सके। तदनुसार, व्याख्याकार को अधिनियम के पारित होने के बाद से कानून, सामाजिक परिस्थितियों, प्रौद्योगिकी, शब्दों के अर्थ और अन्य मामलों में हुए किसी भी प्रासंगिक परिवर्तन को ध्यान में रखना चाहिए। जिस प्रकार अमेरिकी संविधान को 'जीवंत संविधान' माना जाता है, उसी प्रकार किसी भी वर्तमान ब्रिटिश अधिनियम को 'जीवंत अधिनियम' माना जाता है। आज की व्याख्या में यह धारणा शामिल है कि संसद बहुत पहले ऐसी स्थिति के लिए प्रावधान कर रही थी जो उस समय अस्तित्व में नहीं थी, लेकिन यह व्याख्या के विरुद्ध कोई तर्क नहीं है। किसी अधिनियम के शब्दों में संसद से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समय के साथ होने वाले विकास का पूर्वानुमान लगाए। अधिनियम का मसौदा तैयार करने वाला भविष्य का अनुमान लगाने का प्रयास करेगा और शब्दों में उसका ध्यान रखेगा।

"x x x x x x x x

इसलिए, पुराने कानूनों को आज वर्षों से हो रहे गतिशील बदलावों के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए, और उनकी भाषा के वर्तमान अर्थ में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए जिससे मूल विधायी उद्देश्य को प्रभावी बनाया जा सके। गतिशील बदलावों की वास्तविकता और प्रभाव ही क्रमिक समायोजन को संभव बनाते हैं। यह न्यायिक व्याख्याओं द्वारा वर्ष-दर-वर्ष निर्मित होता है। इसमें कार्यकारी अधिकारियों द्वारा की गई प्रक्रिया भी शामिल है।

उपरोक्त सिद्धांत को लागू करने पर भी, पटना, पंजाब और हरियाणा आदि के उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण का समर्थन किया जा सकता है।

अधिनियम की धारा 22, जो एक प्रकार का प्रभार लगाने वाला अनुच्छेद है, की दो संभावित व्याख्याओं को मानते हुए, यह सर्वविदित है कि करदाता के हित में जो व्याख्या उपयुक्त हो, उसे ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इस सिद्धांत के आधार पर भी, पटना, पंजाब और हरियाणा आदि के उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए मत को दिल्ली और आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए विपरीत मत की अपेक्षा प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

इसलिए, हमारा मानना है कि इलाहाबाद, पटना, राजस्थान, पंजाब और हरियाणा उच्च

न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए मत सही हैं। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया विपरीत मत सही नहीं है।

दिल्ली उच्च न्यायालय के अपीलीय फैसले (सी.ए. संख्या 4549/95) से एक अंश उद्धृत करना शायद अनुचित नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने एक तरह से पटना के दृष्टिकोण की सत्यता को स्वीकार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "बिक्री समझौतों और विभिन्न व्यक्तियों को कब्जे सौंपे जाने के मद्देनजर, जो वास्तव में इन फ्लैटों और उनसे होने वाली आय का अपनी इच्छानुसार किसी भी तरह से आनंद लेने के हकदार हैं और जिनके खिलाफ कंपनी ने संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53ए के प्रावधानों के कारण सभी कानूनी अधिकार खो दिए हैं, यह तर्क दिया जा सकता है कि कंपनी संपत्ति पर स्वामित्व के मात्र खोखले आवरण की मालिक है और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के सिद्धांत पर उसका मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए और इस तर्क को शायद स्वीकार करना पड़ सकता है।"

उपरोक्त अवलोकन के बावजूद, दिल्ली उच्च न्यायालय ने इसके विपरीत दृष्टिकोण अपनाया, मुख्य रूप से इस आधार पर कि उस न्यायालय के पूर्व के निर्णयों में लगातार ऐसा ही विपरीत दृष्टिकोण अपनाया गया है जिसका पालन किया जाना चाहिए।

उपरोक्त में हमारे द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण अधिनियम की धारा 27 में किए गए बाद के संशोधन द्वारा पुष्ट/समर्थित है। उक्त संशोधन वित्त अधिनियम, 1987 द्वारा अधिनियम की धारा 27 में पुराने खंड (iii) के स्थान पर खंड (iii), (iiiए) और (iiiबी) को प्रतिस्थापित करके 1.4.88 से प्रभावी किया गया था।

हमारे विचार में, जिन परिस्थितियों में यह संशोधन लागू किया गया और इसके परिणाम, हमारे समक्ष प्रस्तुत मुद्दे का निर्णय करने में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

दूसरे शब्दों में, यदि चर्चा के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संशोधन स्पष्टीकरणात्मक/घोषणात्मक प्रकृति का था और इसलिए इसका पूर्वव्यापी प्रभाव होगा, तो यह विवाद का अंतिम समाधान हो जाएगा।

> हमने देखा है कि इस मुद्दे पर उच्च न्यायालयों में तीक्ष्ण विभाजन है। एक पक्ष का मत है कि प्रवर्तक/ठेकेदार पूर्ण प्रतिफल प्राप्त करने के बाद

संपत्ति का कब्ज़ा छोड़ देते हैं, जिससे 'खरीदार' संपत्ति के लाभों का आनंद ले सकें, भले ही संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के तहत आवश्यक कोई पंजीकृत दस्तावेज निष्पादित न किया गया हो, फिर भी वे अधिनियम की धारा 22 के प्रयोजन के लिए 'मालिक' हो सकते हैं। दूसरे पक्ष का मत है कि जब तक संपत्ति अंतरण अधिनियम के तहत स्वामित्व अंतरित करने वाला कोई पंजीकृत विक्रय दस्तावेज न हो, तब तक तथाकथित खरीदार अधिनियम की धारा 22 के प्रयोजन के लिए मालिक नहीं बन सकते। वास्तव में, दिल्ली उच्च न्यायालय के आई.टी.आर. संख्या 84/77 के फैसले में, जो *सुशील अंसल बनाम सी.आई.टी., दिल्ली-III*, 160 आई.टी.आर. 308 में प्रकाशित हुआ है, जिसके विरुद्ध अपील सी.ए. संख्या 4549/95 (उपरोक्त) है, माननीय न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"निष्कर्ष से पहले, हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि सुनवाई के दौरान, हमने विभाग के स्थायी अधिवक्ता को सुझाव दिया था कि केंद्रीय बोर्ड को इस समस्या के विभिन्न व्यावहारिक पहलुओं पर विचार करना चाहिए और ऐसे दिशानिर्देश तैयार करने चाहिए जो संबंधित विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के लिए न्यायसंगत हों। शायद, जैसा कि इस न्यायालय ने *सीआईटी बनाम हंस राज गुप्ता*, (1981) 137 आई.टी.आर. 195 में सुझाव दिया था, यदि आवश्यक हो, तो संभवतः पूर्वव्यापी प्रभाव से विधायी संशोधन का समय आ गया है। समस्या की बार-बार होने वाली प्रकृति, इसकी व्यापकता और न्यायिक निर्णयों के विरोधाभास को देखते हुए, उच्चतम प्रशासनिक स्तर पर गंभीर विचार-विमर्श आवश्यक था। हालांकि, पर्याप्त समय के लिए स्थगन के बाद, अधिवक्ता ने हमें सूचित किया कि बोर्ड द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है और हमसे अनुरोध किया कि हम संदर्भ पर निर्णय लें। इसलिए, हमने ऐसा करने की कार्यवाही शुरू कर दी है।"

शायद यही एक कारण है कि संसद ने अधिनियम की धारा 27 में उपर्युक्त संशोधन किया। किसी भी स्थिति में, जब संशोधन किया गया था, तब यह स्वीकार किया गया था कि इस मुद्दे पर उच्च न्यायालयों के बीच मतभेद था।

वित्त विधेयक 1987 की धारा 27 से संबंधित प्रावधानों की व्याख्या करने वाले ज्ञापन में निम्नलिखित लिखा है:

प्रावधानों का सरलीकरण और युक्तिकरण

"मकान संपत्ति के मालिक" के अर्थ का विस्तार करना

27. आयकर अधिनियम की धारा 22 के वर्तमान उपबंधों के अंतर्गत, मकान संपत्ति से होने वाली कोई भी आय केवल विधिक स्वामी के हाथों में ही कर योग्य होती है। आयकर अधिनियम की धारा 27 के अनुसार, कुछ ऐसे व्यक्ति, जो अन्यथा विधिक स्वामी नहीं हैं, इन उपबंधों के प्रयोजनों के लिए स्वामी माने जाते हैं।

संपत्ति अंतरण अधिनियम के अंतर्गत, स्वामित्व का अंतरण केवल पंजीकृत दस्तावेज़ के माध्यम से ही किया जा सकता है। तथापि, हाल के समय में संपत्ति में किसी व्यक्ति के स्वामित्व के अंतरण के लिए विभिन्न अन्य उपायों का सहारा लिया जाने लगा है। परिणामस्वरूप, ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनमें वास्तविक स्वामी—उदाहरणार्थ, किसी बहु-मंज़िला भवन में स्थित किसी अपार्टमेंट का धारक, अथवा मुख्तारनामा धारक—संपत्ति का विधिक स्वामी नहीं होता। कुछ मामलों में, विवादों के लंबित निपटारे के कारण, विधिक स्वामी तथा लाभकारी स्वामी, दोनों को ही उसी आय के संबंध में कर के लिए आकलित किया जाता है।

तर्कसंगतीकरण के एक उपाय के रूप में, यह विधेयक आयकर अधिनियम की धारा 27 के खंड (iii) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "मकान संपत्ति का स्वामी" के अर्थ को और विस्तृत करने का प्रयास करता है। इसके अंतर्गत यह उपबंध किया गया है कि जो व्यक्ति धारा 269 यूए के खंड (एफ) में उल्लिखित लेन-देन के माध्यम से संपत्ति पर नियंत्रण प्राप्त करता है, उसे भी उस संपत्ति का स्वामी माना जाएगा। यह संशोधन इस खंड की प्रयोज्यता को किसी कंपनी के सदस्य अथवा व्यक्तियों के किसी अन्य संघ के सदस्य तक भी विस्तारित करने का उद्देश्य रखता है।

इसके अनुरूप संशोधन आयकर अधिनियम की धारा 2(47) में दी गई "अंतरण" की परिभाषा के संबंध में, धन-कर अधिनियम की धारा 2(एम) में "शुद्ध संपत्ति"की परिभाषा के संबंध में, तथा उपहार-कर अधिनियम की धारा 2(xii) में "उपहार" की परिभाषा के संबंध में भी प्रस्तावित किए गए हैं।

ये संशोधन 1 अप्रैल 1988 से प्रभावी होंगे और तदनुसार आकलन वर्ष 1988-89 तथा उसके पश्चात् के वर्षों पर लागू होंगे।

यदि उपर्युक्त बात स्पष्ट है, तो अगला प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है, वह यह है

कि इस संशोधन का प्रभाव क्या है।

क्रॉफर्ड की *स्टैच्यूटरी कंस्ट्रक्शन* पुस्तक के पृष्ठ 107, अनुच्छेद 74 में ए इस प्रकार लिखा है:

> *"74. घोषणात्मक क़ानून.- सामान्यतः, घोषणात्मक क़ानूनों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: (1) वे जो सामान्य विधि की घोषणा करते हैं, और (2) वे जो किसी मौजूदा क़ानून के अर्थ की घोषणा करते हैं। स्पष्टतः, सामान्य विधि की घोषणा करने वाले क़ानूनों की व्याख्या सामान्य विधि के अनुसार ही की जानी चाहिए। दूसरे वर्ग के क़ानूनों की व्याख्या भविष्य के मामलों के लिए एक मानदंड निर्धारित करने और पूर्वव्यापी रूप से लागू होने के उद्देश्य से की जानी चाहिए। ये व्याख्यात्मक खंडों से काफी मिलते-जुलते हैं, और इनका सर्वोपरि उद्देश्य मौजूदा कानून के अर्थ के बारे में संदेह को दूर करना या विधायिका द्वारा त्रुटिपूर्ण मानी गई व्याख्या को सही करना है।"*
>
> (जोर दिया गया)

फ्रांसिस बेनियन की स्टेट्यूटरी इंटरप्रिटेशन (द्वितीय संस्करण), 1992, पृष्ठ 105 में, विद्वान लेखक कहते हैं, "घोषणात्मक अधिनियम - एक घोषणात्मक अधिनियम या अधिनियम यह घोषित करता है कि किसी विशेष बिंदु पर कानून क्या है, *अक्सर 'संदेह से बचने के लिए'।"*

न्यायमूर्ति जी.पी. सिंह की पुस्तक (छठा संस्करण, 1996) 'वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत' में "घोषणात्मक क़ानून" शीर्षक के अंतर्गत, विद्वान लेखक ने निम्नलिखित रूप से सारांशित किया है:

> "घोषणात्मक कानून
>
> पूर्वव्यापी प्रभाव के विरुद्ध अनुमान घोषणात्मक कानूनों पर लागू नहीं होता है। जैसा कि सी.आर.ए.आई.इ.एस में कहा गया है और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित है: "आधुनिक प्रयोजनों के लिए, एक घोषणात्मक अधिनियम को सामान्य कानून, या किसी भी कानून के अर्थ या प्रभाव के संबंध में मौजूदा संदेहों को दूर करने वाले अधिनियम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ऐसे अधिनियमों को आमतौर पर पूर्वव्यापी माना जाता

है। घोषणात्मक अधिनियम पारित करने का सामान्य कारण संसद द्वारा न्यायिक त्रुटि माने जाने वाले किसी भी त्रुटि को दूर करना है, चाहे वह सामान्य कानून के कथन में हो या कानूनों की व्याख्या में। आमतौर पर, यदि हमेशा नहीं, तो ऐसे अधिनियम में एक प्रस्तावना होती है, और 'घोषित' शब्द के साथ-साथ 'अधिनियमित' शब्द भी होते हैं।" लेकिन 'यह घोषित किया जाता है' शब्दों का प्रयोग यह निर्णायक नहीं है कि अधिनियम घोषणात्मक है, क्योंकि इन शब्दों का प्रयोग कभी-कभी कानून के नए नियम पेश करने के लिए किया जा सकता है और बाद के मामले में अधिनियम केवल कानून में संशोधन करेगा और जरूरी नहीं कि वह पूर्वव्यापी हो। अतः, अधिनियम की प्रकृति का निर्धारण करते समय, उसके स्वरूप के बजाय उसके सार पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई नया अधिनियम किसी पूर्ववर्ती अधिनियम की व्याख्या करने के लिए है, तो पूर्वव्यापी प्रभाव के बिना उसका कोई उद्देश्य नहीं होगा। व्याख्यात्मक अधिनियम सामान्यतः किसी स्पष्ट चूक को दूर करने या पूर्ववर्ती अधिनियम के अर्थ के संबंध में संदेह को स्पष्ट करने के लिए पारित किया जाता है। यह सर्वविदित है कि यदि कोई क़ानून सुधारात्मक है या पूर्ववर्ती कानून की मात्र व्याख्या करता है, तो सामान्यतः पूर्वव्यापी प्रभाव का ही अभिप्रेत होता है। 'हमेशा से यही अर्थ माना जाएगा' वाक्यांश व्याख्यात्मक है और स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी है। यदि संशोधन अधिनियम को व्याख्यात्मक बताने वाले स्पष्ट शब्द न हों, तो पूर्व-संशोधित प्रावधान के स्पष्ट और असंदिग्ध होने पर इसकी व्याख्या इस प्रकार नहीं की जाएगी। एक संशोधन अधिनियम विशुद्ध रूप से व्याख्यात्मक हो सकता है ताकि मूल अधिनियम के किसी ऐसे प्रावधान के अर्थ को स्पष्ट किया जा सके जो पहले से ही निहित था। इस प्रकार का स्पष्टीकरणात्मक संशोधन पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होगा और इसलिए, यदि मूल अधिनियम संविधान के लागू होने के समय विद्यमान कानून था, तो संशोधन अधिनियम भी विद्यमान कानून का हिस्सा होगा।

उपरोक्त सारांश तथ्यात्मक रूप से इस न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ अंग्रेजी निर्णयों पर आधारित है।

इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने *केशवलाल जेठलाल शाह बनाम मोहनलाल भगवानदास एवं एक अन्य*, [1968] 3 एस.सी.आर. 623 में, गुजरात अधिनियम 18, 1965

द्वारा संशोधित बॉम्बे किराया, होटल और लॉजिंग हाउस दर नियंत्रण अधिनियम की धारा 29(2) में संशोधन की प्रकृति पर विचार करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "संशोधन का उद्देश्य किसी भी पूर्व-मौजूदा कानून की व्याख्या करना नहीं है जो अस्पष्ट या दोषपूर्ण था। पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए याचिका पर सुनवाई करने की उच्च न्यायालय की शक्ति संशोधन से पहले सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 से प्राप्त थी, और विधायिका ने संशोधन अधिनियम द्वारा उस प्रावधान के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। *एक व्याख्यात्मक अधिनियम आम तौर पर किसी स्पष्ट चूक को दूर करने या पिछले अधिनियम के अर्थ के संबंध में संदेह को दूर करने के लिए पारित किया जाता है।*"
>
> (जोर दिया गया)

उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों से तथा वित्त विधेयक, 1987 की व्याख्या करने वाले स्मरण-पत्र से (उपर्युक्त संदर्भित), यह पूर्णतः स्पष्ट है कि यह संशोधन एक स्पष्ट चूक की पूर्ति करने अथवा अधिनियम की धारा 22 में प्रयुक्त "स्वामी" शब्द के अर्थ के संबंध में उत्पन्न संदेहों को दूर करने के उद्देश्य से किया गया था। हम यह नहीं मानते कि, किसी घोषणात्मक/स्पष्टीकरणात्मक अधिनियम की स्थिति के स्पष्ट प्रतिपादन के प्रकाश में, इस विषय पर प्राधिकारों की संख्या बढ़ाना आवश्यक है। अतः हम बिना किसी संकोच के यह निर्णय देते हैं कि वित्त विधेयक, 1988 द्वारा किया गया संशोधन, जहाँ तक उसका संबंध धारा 27(iii), (iii ए) तथा (iii बी) से है, घोषणात्मक/स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति का है। परिणामस्वरूप, ये उपबंध पूर्वप्रभावी रूप से लागू होंगे। ऐसा होने पर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, पटना, राजस्थान तथा कलकत्ता के उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण समर्थित होता है और तदनुसार दिल्ली, बॉम्बे तथा आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाया गया विपरीत दृष्टिकोण सही विधि नहीं है।

हम उस स्थापित विधिक स्थिति से अवगत हैं कि सामान्य विधि के अंतर्गत "स्वामी" से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से होता है जिसे संपत्ति अंतरण अधिनियम, पंजीकरण अधिनियम आदि की विधिक आवश्यकताओं का पालन करते हुए विधिपूर्वक वैध स्वामित्व अंतरण द्वारा अधिकार प्राप्त हुआ हो। किंतु आयकर अधिनियम की धारा 22 के संदर्भ में, भूमिगत वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए तथा आयकर अधिनियम के उद्देश्य—अर्थात्

आय पर कर लगाना— को दृष्टिगत रखते हुए, हमारा मत है कि "स्वामी" वह व्यक्ति है जो अपने अधिकार में संपत्ति से आय प्राप्त करने का अधिकारी है।

उपरोक्त वर्णन एवं चर्चा के प्रकाश में, हम यह आवश्यक नहीं समझते कि बार के समक्ष प्रस्तुत तर्कों पर पृथक रूप से और अधिक चर्चा की जाए।

अंततः, हम इस न्यायालय के समक्ष संदर्भित प्रश्न का उत्तर टी.आर.सी. सं. 9–10/88 में नकारात्मक रूप में तथा राजस्व के पक्ष में देते हैं। परिणामस्वरूप, राजस्व द्वारा दायर दीवानी अपील सं. 4165/94 निरस्त की जाती है तथा निर्धारिती द्वारा दायर दीवानी अपील सं. 4549/95 स्वीकृत की जाती है। तथापि, व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

आर.ए.

राजस्व—टी.आर.सी. सं. 9–10/88 स्वीकृत।
दीवानी अपील सं. 4165/94 निरस्त।
दीवानी अपील सं. 4549/95 स्वीकृत।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।